द्रव्य-गुण-पर्याय

प्राकृत-पालि दव्व-दव्व शब्द और संस्कृत द्रव्य शब्द बहुत प्राचीन है। लोकव्यवहारमें तथा काव्य, व्याकरण, आयुर्वेद, दर्शन आदि नाना शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न अर्थोंमें उसका प्रयोग भी बहुत प्राचीन एवं रूढ़ जान पड़ता है। उसके प्रयोग-प्रचारकी व्यापकताको देखकर पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें उसे स्थान देकर दो प्रकारसे उसकी व्युत्पत्ति बतलाई है जिसका अनुकरण पिछले सभी वैयाकरणोंने किया है। तद्धित प्रकरणमें द्रव्य शब्दके साधक खास जो दो सूत्र (५. ३. १०४; ४. ३ १६१) बनाये गए हैं उनके अलावा द्रव्य शब्द सिद्धिका एक तीसरा भी प्रकार कृत् प्रकरणमें है। तद्धितके अनुसार पहली व्युत्पत्ति यह है कि द्रु=वृक्ष या काष्ठ+य=विकार या अवयव अर्थात् वृक्ष या काष्ठका विकार तथा अवयव द्रव्य। दूसरी व्युत्पत्ति यों है—द्रु=काष्ठ + य = तुल्य अर्थात् जैसे सीधी और साफ सुथरी लकड़ी बनानेपर इष्ट आकार धारण कर सकती है वैसे ही जो राजपुत्र आदि शिक्षा दिये जानेपर राज योग्य गुण धारण करनेका पात्र है वह भावी गुणोंकी योग्यताके कारण द्रव्य कहलाता है। इसी प्रकार अनेक उपकारोंकी योग्यता रखनेके कारण धन भी द्रव्य कहा जाता है। कृदन्त प्रकरण के अनुसार गति-प्राप्ति अर्थवाले द्रु धातु से कर्मार्थक य प्रत्यय आने पर भी द्रव्य शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है प्राप्तियोग्य अर्थात् जिसे अनेक अवस्थाएँ प्राप्त होती है। वहाँ व्याकरणके नियमानुसार उक्त तीन प्रकारकी व्युत्पत्तिमें लोक-शास्त्र प्रसिद्ध द्रव्य शब्दके सभी अर्थोंका किसी न किसी प्रकारसे समावेश हो ही जाता है।

यद्यपि जैन साहित्यमें भी करीब-करीब उन्हीं सभी अर्थों में प्रयुक्त द्रव्य शब्द देखा जाता है तथापि द्रव्य शब्दकी जैन प्रयोग परिपाटी अनेक अंशोंमें अन्य सब शास्त्रोंसे भिन्न भी है। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव आदि निक्षेप (तत्त्वार्थ० १. ५) प्रसङ्गमें; द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि प्रसङ्गमें (भग० श० २. उ० १); द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकरूप नयके प्रसङ्गमें (तत्त्वार्थभा० ५. ३१); द्रव्याचार्य (पञ्चाशक ६), भावाचार्य आदि प्रसङ्गमें; द्रव्यकर्म, भावकर्म आदि प्रसङ्गमें प्रयुक्त होनेवाला द्रव्य शब्द जैन परिभाषाके अनुसार ख़ास-ख़ास अर्थका बोधक है जो अर्थ तद्धित प्रकरणसाधित भव्य-योग अर्थवाले द्रव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दके बहुत नजदीक है अर्थात् वे सभी अर्थ भव्य अर्थके भिन्न-भिन्न रूपान्तर हैं। विश्वके मौलिक पदार्थोंके अर्थमें भी द्रव्य शब्द जैन दर्शनमें पाया जाता है जैसे जीव, पुद्गल आदि छः द्रव्य।

न्याय वैशेषिक आदि दर्शनोंमें (वै० सू० १. १. १५) द्रव्य शब्द गुण-कर्माधार अर्थमें प्रसिद्ध है जैसे पृथ्वी जल आदि नव द्रव्य। इसी अर्थको लेकर भी उत्तराध्ययन (२८. ६) जैसे प्राचीन आगममें द्रव्य शब्द जैन दर्शन सम्मत छः द्रव्योंमें लागू किया गया देखा जाता है। महाभाष्यकार पतञ्जलिने (पात० महा० पृ० ५८) अनेक भिन्न-भिन्न स्थलोंमें द्रव्य शब्दके अर्थकी चर्चा की है। उन्होंने एक जगह कहा है कि घड़ेको तोड़कर कुण्डी और कुण्डीको तोड़कर घड़ा बनाया जाता है एवं कटक कुंडल आदि भिन्न-भिन्न अलङ्कार एक दूसरेको तोड़कर एक दूसरेके बदलेमें बनाये जाते हैं फिर भी उन सब भिन्न भिन्न कालीन भिन्न-भिन्न आकृतियोंमें जो मिट्टी या सुवर्ण नामक तत्त्व कायम रहता है वही अनेक भिन्न-भिन्न आकारोंमें स्थिर रहनेवाला तत्त्व द्रव्य कहलाता है। द्रव्य शब्दकी यह व्याख्या योगसूत्रके व्यासभाष्यमें (३. १३) भी ज्योंकी त्यों है और मीमांसक कुमारिलने भी वही (श्लोकवा० वन० श्लो० २१-२२) व्याख्या ली है। पतञ्जलिने दूसरी जगह (पात० महा० ४. १. ३; ५ १. ११६) गुणसमुदाय या गुण सन्द्रावको द्रव्य कहा है। यह व्याख्या बौद्ध प्रक्रियामें विशेष सङ्गत है। जुदे-जुदे गुणोंके प्रादुर्भाव होते रहनेपर भी अर्थात् जैन परिभाषाके अनुसार पर्यायोंके नवनवोत्पाद होते रहनेपर भी जिसके मौलिकत्वका नाश नहीं होता वह द्रव्य ऐसी भी संक्षिप्त व्याख्या पतञ्जलिके महाभाष्य (५. १. ११६) में है। महाभाष्यप्रसिद्ध और बादके व्यासभाष्य, श्लोकवार्तिक आदिमें समर्थित द्रव्य शब्दकी उक्त सभी व्याख्याएँ जैन परम्परामें उमास्वातिके सूत्र और भाष्यमें (५. २९, ३०, ३७) सबसे पहिले संगृहीत देखी जाती हैं। जिनभद्र क्षमाश्रमणने तो (विशेषा० गा० २८ , अपने भाष्यमें अपने समयतक प्रचलित सभी व्याख्याओंका संग्रह करके द्रव्य शब्दका निर्वचन बतलाया है।

अकलङ्कके (लघी० २. १) ही शब्दोंमें विषयका स्वरूप बतलाते हुए आ० हेमचन्द्र ने द्रव्यका प्रयोग करके उसका आगमप्रसिद्ध और व्याकरण तथा दर्शनान्तरसम्मत ध्रुवभाव (शाश्वत, स्थिर) अर्थ ही बतलाया है। ऐसा अर्थ बतलाते समय उसकी जो व्युत्पत्ति दिखाई है वह कृत् प्रकरणानुसारी अर्थात् द्रु धातु + य प्रत्यय जनित है प्र० मी० पृ० २४।

प्रमाणविषयके स्वरूपकथनमें द्रव्यके साथ पर्यायशब्दका भी प्रयोग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत, प्राकृत, पालि जैसी शास्त्रीय भाषाओंमें वह शब्द बहुत पुराना और प्रसिद्ध है पर जैन दर्शनमें उसका जो परिभाषिक अर्थ है वह अर्थ अन्य दर्शनों में नहीं देखा जाता। उत्पादविनाशशाली या आविर्भाव-तिरोभाववाले जो धर्म जो विशेष या जो अवस्थाएँ द्रव्यगत होती हैं वे ही पर्याय या परिणामके नाम से जैन दर्शनमें प्रसिद्ध हैं जिनके वास्ते न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंमें गुण शब्द प्रयुक्त होता है। गुण, क्रिया आदि सभी द्रव्यगत धर्मोंके अर्थमें आ० हेमचन्द्रने पर्यायशब्दका प्रयोग किया है। पर गुण तथा पर्याय शब्दके बारेमें जैन दर्शनका इतिहास खास ज्ञातव्य है।

भगवती आदि प्राचीनतर आगमोंमें गुण और पर्याय दोनों शब्द देखे जाते हैं। उत्तराध्ययन (२८. १३) में उनका अर्थभेद स्पष्ट है। कुन्दकुन्द, उमास्वाति (तत्त्वार्थ० ५.३७) और पूज्यपादने भी उसी अर्थका कथन एवं समर्थन किया है। विद्यानन्दने भी अपने तर्कवादसे उसी भेदका समर्थन किया है पर विद्यानन्दके पूर्ववर्ती अकलङ्कने गुण और पर्यायके अर्थोंका भेदाभेद बतलाया है जिसका अनुकरण अमृतचन्द्रने भी किया है और वैसा ही भेदाभेद समर्थन तत्त्वार्थभाष्यकी टीकामें सिद्धसेनने भी किया है। इस बारेमें सिद्धसेन दिवाकरका एक नया प्रस्थान जैन तत्त्वज्ञानमें शुरू होता है जिसमें गुण और पर्याय दोनों शब्दोंको केवल एकार्थक ही स्थापित किया है और कहा है कि वे दोनों शब्द पर्याय मात्र हैं। दिवाकरकी अभेद समर्थक युक्ति यह है कि आगमोंमें गुणपदका यदि पर्याय पदसे भिन्न अर्थ अभिप्रेत होता तो जैसे भगवानने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो प्रकारसे देशना की है वैसे वे तीसरी गुणार्थिक देशना भी करते। जान पड़ता है इसी युक्तिका असर हरिभद्र पर पड़ा जिससे उसने भी अभेदवाद ही मान्य रक्खा। यद्यपि देवसूरिने गुण और पर्याय दोनोंके अर्थभेद बतलानेकी चेष्टा की (प्रमाणन० ५. ७, ८) है फिर भी जान पड़ता है उनके दिल पर भी अभेदका ही प्रभाव है। आ० हेमचन्द्रने तो विषयलक्षण सूत्रमें गुणपदको स्थान ही नहीं दिया और न गुण-पर्याय शब्दोंके अर्थविषयक भेदाभेदकी चर्चा ही की। इससे आ० हेमचन्द्रका इस बारेमें मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है कि वे भी अभेदके ही समर्थक हैं। उपाध्याय यशोविजयजीने भी इसी अभेद पक्षको स्थापित किया है। इस विस्तृत इतिहाससे इतना कहा जा सकता है कि आगम जैसे प्राचीन युगमें गुण-पर्याय दोनों शब्द प्रयुक्त होते रहे होंगे। तर्कयुग के आरम्भ और विकासके साथ ही साथ उनके अर्थविषयक भेद-अभेद की चर्चा शुरू हुई और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे बढ़ी। फलस्वरूप भिन्न-भिन्न आचार्योंने इस विषयमें अपना भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दु प्रकट किया और स्थापित भी किया[1]।

इस प्रसङ्गमें गुण और पर्याय शब्दके अर्थविषयक पारस्परिक भेदाभेदकी तरह पर्याय-गुण और द्रव्य इन दोनोंके पारस्परिक भेदाभेद विषयक दार्शनिक चर्चा जानने योग्य है। न्याय-वैशेषिक आदि दर्शन भेदवादी होनेसे प्रथमसे ही आज तक गुण, कर्म आदिका द्रव्यसे भेद मानते हैं। अभेदवादी सांख्य, वेदान्तादि उनका द्रव्यसे अभेद मानते आये हैं। ये भेदाभेदके पक्ष बहुत पुराने हैं क्योंकि खुद महाभाष्यकार पतञ्जलि इस बारेमें मनोरंजक और विशद चर्चा शुरू करते हैं। वे प्रश्न उठाते हैं कि द्रव्य, शब्द, स्पर्श आदि गुणोंसे अन्य है या अनन्य?। दोनों पक्षोंको स्पष्ट करके फिर वे अन्तमें भेदपक्षका समर्थन करते हैं[2]।

जानने योग्य खास बात तो यह है कि गुण-द्रव्य या गुण-पर्यायके जिस भेदाभेदकी स्थापना एवं समर्थनके वास्ते सिद्धसेन, समन्तभद्र आदि जैन तार्किकोंने अपनी कृतियोंमें खासा पुरुषार्थ किया है उसी भेदाभेदवादका समर्थन मीमांसकधुरीण कुमारिलने भी बड़ी स्पष्टता एवं तर्कवादसे किया है—श्लोकवा० आकृ० श्लो० ४–६४; वन० श्लो० २१-८०।

आ० हेमचन्द्रको द्रव्य-पर्यायका पारस्परिक भेदाभेद वाद ही सम्मत है जैसा अन्य जैनाचार्यों को।

१ इस विषयके सभी प्रमाणके लिए देखो सन्मतिटी० पृ० ६३१. टि० ४।

२ 'किं पुनर्द्रव्यं के पुनर्गुणाः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा गुणास्ततोऽन्यद् द्रव्यम्। किं पुनरन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यमाहोस्विदनन्यत्। गुणस्थायं भावात् द्रव्ये शब्दनिवेशं कुर्वन् ख्यापयत्यन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यमिति। अनन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यम्। न ह्यन्यदुपलभ्यते। पशोः खल्वपि विशसितस्य पर्णशते न्यस्तस्य नान्यच्छब्दादिभ्य उपलभ्यते। अन्यच्छब्दादिभ्यो द्रव्यम्। तत् स्वनुमानगम्यम्। तद्यथा। ओषधिवनस्पतीनां वृद्धिह्रासौ। ज्योतिषां गतिरिति। कोसावनुमानः। इह समाने वर्ष्मणि परिणाहे च अन्यत्तुलाग्रं भवति लोहस्य अन्यत् कार्पासानां यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। तथा कश्चिदेकेनैव प्रहारेण व्यपवर्ग करोति कश्चित् द्वाभ्यामपि न करोति। यत्कृतो विशेषस्तद् द्रव्यम्। अथवा यस्य गुणान्तरेष्वपि प्रादुर्भवत्सु तत्त्वं न विहन्यते तद् द्रव्यम्। किं पुनस्तत्त्वम्। तद्भावस्तत्त्वम्। तद्यथा। आमलकादिनां फलानां रक्तादयः पीतादयश्च गुणाः प्रादुर्भवन्ति। आमलकं बदरमित्येव भवति। अन्वर्थं खलु निर्वचनं गुणसंद्रावो द्रव्यमिति।' —पात० महा० ५. १. ११९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org